आसोज शुक्ल ३, सोमवार, दिनांक - ०१-१०-१९६२
गाथा - ६७ से ७३, ८८, ५२८, ५३९
प्रवचन-७

ज्ञानसमुच्चयसार, इसकी ६७ वीं गाथा है। यहाँ अधिकार चौदह पूर्व है न, उस पूर्व को अध्यात्म में उतारा है। चौदह पूर्व में एक-एक पूर्व में क्या कहा है। समझ में आया? पूर्व तो वर्तमान में नहीं। चौदह पूर्व तो विच्छेद हो गये हैं, परन्तु चौदह पूर्व में कहा क्या है एक-एक पूर्व में? यह बात यहाँ कहते हैं। ६७ (गाथा)।

नन्तानंत स्वयं दिस्टं, धरयंति धर्म, धुवं।
धर्म सुक्लं च ध्यानं च, सुध तत्त्वं सार्धं, बुधैः ॥६७॥

बुद्धिमान भेदज्ञानी... धर्मात्मा ने पूर्व में क्या कहा है? वह अन्दर क्या साधता है? कि **बुद्धिमान...** सम्यग्ज्ञानी विचिक्षण उसे कहते हैं कि **भेदज्ञानी शुद्ध आत्मतत्त्व...** पुण्य व्यवहार से पृथक् अपना शुद्ध परमात्मस्वरूप है, उसका साधन करता है। वह साधन पूर्व में बताया है। चौदह पूर्व में वह बताया है। पण्डितजी! चौदह पूर्व में वह बताया है, ऐसा कहते हैं। दूसरी जानने की बात अनेक हो, परन्तु आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, उसकी अन्तर में एकाग्र होकर राग से, पुण्य से, व्यवहार से, निमित्त से, मन से हटकर स्वभाव का अन्तर साधन करता है, उसे साधक, चौदह पूर्व में उसे साधक कहा गया है। समझ में आया?

देखो, यह लोग कहते हैं न कि व्यवहार और निश्चय दोनों समान हैं, समकक्षी हैं। ऐसा नहीं है। व्यवहार तो शुभराग, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पुण्यभाव, भक्ति, पूजा, व्रत, नियम, तप—ऐसा शुभराग आता है, वह वास्तव में स्वरूप का साधन चौदह पूर्व में कहा नहीं। समझ में आया? शुभराग है, पुण्यबन्ध का कारण है, परन्तु चौदह पूर्व में एक-एक पूर्व के अन्दर अपना आत्मा पर से रहित अपना शुद्ध चैतन्य भगवान, ज्ञान से ज्ञान को अन्दर जोड़ना और उसका साधन करना, वही धर्मध्यान और शुक्लध्यान का अभ्यास है। वह धर्मध्यान है। समझ में आया? कोई शुभभाव को धर्मध्यान कहते है न? शुभभाव को व्यवहार से कहते हैं, परन्तु वह वास्तव में धर्मध्यान नहीं। आत्मा

का चिन्तन, विकल्प आता है शुभराग, वह वास्तव में धर्मध्यान नहीं है। उपचार से धर्मध्यान कहते हैं। कब ? कि जब स्वभाव का साधन निश्चय का धर्मध्यान हो तो। निश्चय का स्वभाव साधन न हो तो शुभराग को उपचार से भी धर्मसाधन का आरोप नहीं आता। समझ में आया ? बहुत समझने की चीज़ है। शोभालालजी ! कहो, क्या कहते हैं ?

धर्मध्यान व शुक्लध्यान का अभ्यास है, उस ध्यान में... 'नन्तानंत स्वयं दिस्टं' अनन्तानन्त गुणों का धारी... देखो, दोपहर में चलता है न। अनन्तानन्त शक्तियों का धारी, अनन्तानन्त गुणों का धारी अपना **आत्मा स्वयं अनुभव में आता है।** उसे चौदह पूर्व में कहा है कि उसे हम साधक कहते हैं। समझ में आया ? ....लालजी ! यह व्यवहार की क्रिया-ब्रिया साधन निमित्त से, आरोप से कही जाती है, परन्तु वह निश्चय साधन अन्तर में हो तो। वह साधन न हो तो राग को व्यवहार साधन का भी उपचार नहीं आता। समझ में आया ?

'नन्तानंत स्वयं दिस्टं' है न ? **'दिस्टं'** है, हों ! **'दिस्टं' 'दिस्टं'** वह पहले... आ गया। ... अर्थात् धर्म है न ! अनन्तानन्त स्वयं अपने अन्तर स्वरूप का राग से लक्ष्य छोड़कर चैतन्य ज्ञानानन्दस्वरूप, देखो ! राग का भी आधार नहीं। राग आता है न शुभराग ? मैं आत्मा हूँ, यह ज्ञान है, मैं आनन्दवाला हूँ—ऐसा जो विकल्प है, उसका भी स्वभाव साधन में आधार नहीं, स्वभाव साधन में आधार नहीं। ऐसे अन्दर धर्मध्यान को भगवान ने चौदह पूर्व में ध्यान निश्चय आत्मधर्म में स्थापित किया है कि अपने स्वरूप में स्थिर हो, उसे धर्मध्यान और साधक कहा जाता है। कहो, समझ में आया ? सेठी !

एक इसमें है, दूसरे में नहीं। प्रायश्चित्त का अधिकार है न, भाई ! पृष्ठ २८८ है, देखो। २८८। प्रायश्चित्त की व्याख्या बहुत अच्छी की है। २८८ है न ! प्रायश्चित्त ५२८ श्लोक है ज्ञानसमुच्चयसार का (श्लोक है)। .... ५२८ श्लोक। ५२८, देखो क्या कहते हैं ? यहाँ कहते हैं न यह ? कि अन्दर आत्मा के स्वरूप को देखना, शुद्ध अनन्त आनन्द शक्ति का भण्डार भगवान के ऊपर लक्ष्य करके अपने परिणाम को आत्मा की ओर झुकाना, निर्मल परिणाम को। उसी साधन को भगवान साधकजीव को धर्मी कहते हैं। बीच में रागादि विकल्प होता है, परन्तु वह वास्तव में साधक नहीं। तो कहते हैं प्रायश्चित्त में, देखो ! गाथा आयी ? ५२८।

प्राच्छितं नहु पिच्छदि, अप्राच्छितं सुध परमप्पानं।
मिच्छा मयं न दिस्टदि, सुध सहाव सरुव पिच्छंति ॥५२८ ॥

क्या कहते हैं? '**प्राच्छितं नहु पिच्छदि' जो प्रस्तुत अर्थात् प्राप्त शरीरादि पदार्थ व कर्मादि उनको नहीं देखता है...** देखो! प्रस्तुत अर्थात् जो खास बाहर में दिखते हैं। शरीर, वाणी, कर्म, पुण्य, दया, दान, विकल्प राग, वह सब प्रस्तुत। बाहर के पदार्थ जो दिखते हैं, उन्हें तो धर्मी देखता नहीं। समझ में आया? क्या कहते हैं? उसका आश्रय नहीं करता। **जो प्रस्तुत अर्थात् प्राप्त शरीरादि पदार्थ व कर्मादि उनको नहीं देखता है...** परन्तु '**अप्राच्छितं सुध परमप्पानं' जो वर्तमान में प्राप्त नहीं है, ऐसे परम शुद्ध आत्मा की ओर ध्यान लगाता है।** क्या कहते हैं? यह प्रगट का आश्रय नहीं करता। प्रगट शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के भाव, वे प्रगट हैं, वह प्रस्तुत है, उसका तो विचार, उसका तो आश्रय नहीं करता।

'**अप्राच्छितं सुध परमप्पानं**' परन्तु अप्रस्तुत अर्थात् व्यक्त प्रगट नहीं, ऐसा शुद्ध भगवान अनन्त गुण का धारी आत्मा, उसका '**सुध परमप्पानं**' ध्यान करता है। **ऐसे परम शुद्ध आत्मा की ओर ध्यान लगाता है।** समझ में आया? प्रस्तुत नहीं कहते भाई? क्या यह बाहर में अपने शब्द चलता है न? मौजूद। यह प्रस्तुत चलता है न। भाषा चलती है यहाँ। प्रस्तुत नहीं? यह चालू। यह प्रस्तुत वार्ता है, प्रस्तुत बात है, प्रस्तुत बात है, ऐसा अपने भाषा में चलता है। यह चालू और अप्रस्तुत अर्थात् नहीं चालू। ऐसा यहाँ कहते हैं। देखो, यहाँ तारणस्वामी ५२८ श्लोक में प्रायश्चित्त का स्वरूप कहते हैं। प्रायश्चित्त उसे कहते हैं और धर्म के साधक उसे कहते हैं कि '**प्राच्छितं नहु पिच्छदि**' जो चलती बात अनादि से पुण्य राग, दया, दान, देहादि की क्रिया को तो देखता नहीं, उसकी श्रद्धा नहीं करता, उसका आश्रय नहीं करता। समझ में आया?

भाई! ऐसा कहते हैं कि अनादि का चला आता है यह प्रस्तुत। ऐसा कहते हैं। यह ४१३ गाथा में है न! ४१३ समयसार। वे कहते हैं या नहीं? व्यवहार है न व्यवहार, वह व्यवहार करे। अरे! व्यवहार तो तेरा अनादि का प्रस्तुत चला आता है। समयसार की ४१३वीं गाथा में आया है कि राग की मन्दता-तीव्रता... मन्दता-तीव्रता... मन्दता-

तीव्रता, यह तो अनादि से चली आती है, इसमें कुछ नयी बात नहीं है। कषाय की मन्दता हो, शुभराग हो, व्यवहार श्रद्धा आदि राग हो, वह तो अनन्त काल से ऐसी बात नौवें ग्रैवेयक गया तो भी की थी। तो प्रस्तुत अर्थात् चली आती जो पर्याय राग की, पुण्य की, दया की, विकल्प की, शरीर की, वाणी–मन की, इन सबका सम्यग्दृष्टि आश्रय नहीं लेता। समझ में आया? देखो! ५२८ में है। है न पण्डितजी!

'प्राच्छितं नहु पिच्छदि' प्रस्तुत अर्थात् वर्तमान प्राप्त, बाहर प्रगट राग, पुण्य, विकल्प व्यवहार का तो आश्रय लेता नहीं अथवा देखता नहीं, उसके ऊपर दृष्टि देता नहीं। **'अप्राच्छितं सुध परमप्पानं'** परन्तु अनादि काल का अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा है, जो प्रगट वर्तमान में पर्याय में प्रगट नहीं। **ऐसे परम शुद्ध आत्मा की ओर ध्यान लगाता है।** समझ में आया? वे कहे कि नहीं। व्यवहार और निश्चय दोनों समान हैं। निमित्त और उपादान दोनों समान हैं। यहाँ कहते हैं कि शुद्ध उपादान स्वयं से साधन करता है, उसमें निमित्त बिल्कुल समान नहीं। विकल्प–राग वह निमित्त है। व्यवहाररत्नत्रय वह विकल्प निमित्त है। वह निमित्त कुछ भी अपने में यह प्रस्तुत रागादि अनादिकाल से चला आता है, वह त्रिकाल चैतन्य में अप्रस्तुत जो स्वभाव प्रगट नहीं, उसका आश्रय करने में वह (विकल्प) काम नहीं करता। शुभराग के आश्रय से अपने स्वभाव का काम हो, ऐसा कभी तीन काल में नहीं होता। महेन्द्रजी! समझ में आया?

देखो! यह ज्ञानसमुच्चयसार में ५२८ श्लोक है। समझ में आया? तो कहते हैं **'मिच्छा मयं न दिस्टदि'** और जो **मिथ्यात्व व मद को नहीं देखता है। 'मिच्छा मयं'** अभिप्राय (रखता है कि) राग से मुझे लाभ होगा, पुण्य से मुझे लाभ होगा, बाह्य क्रिया से मुझे लाभ होगा, ऐसे मिथ्यात्व मद को देखता नहीं। **शुद्ध आत्म–स्वभाव के द्वारा जो अपने स्वरूप को देखता है, वह प्रायश्चित तप पालता है।** ऐसी मिथ्या श्रद्धा छोड़कर अपने शुद्ध स्वभाव का साधन करता है, देखता है, उसे भगवान प्रायश्चित्त तप कहते हैं। समझ में आया? बारह प्रकार में आता है न। संसरण, इन्द्रिय, प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, सज्झाय प्रायश्चित आता है न? अभ्यन्तर तप। तो प्रायश्चित अभ्यन्तर तप कहते हैं किसे? वह अभ्यन्तर शब्द आया न भाई? तो वे बाह्य जो प्रस्तुत हैं, उन्हें छोड़ दिया उसका ऐसा अर्थ निकाला। अभ्यन्तर प्रायश्चित्त का अर्थ ऐसा निकाला कि बाह्य

में जो शुभरागादि वर्तते हैं, वह प्रस्तुत अनादि से चला आता है। उसे छोड़कर अप्रस्तुत जो अभ्यन्तर चैतन्य अनन्त गुण का धारी भगवान आत्मा है, उसकी लय लगावे, उसकी ओर आत्मा की पर्याय को जोड़ता है, उसे भगवान प्रायश्चित कहते हैं। उसका नाम सच्चा प्रायश्चित और प्रायश्चित का तप कहा जाता है। समझ में आया? '**मिच्छा मयं न दिस्टदि**' मिथ्या अभिप्राय को और मिथ्या अभिप्राय के आश्रय से लाभ होता है, ऐसा देखता नहीं। '**सुध सहाव सरुव पिच्छंति**' लो! फिर दूसरी गाथा है, उसमें थोड़ी।

रागादि दोस रहियं, धम्म ज्ञान झायंति तं मुनिना।
कुन्यान सल्य रहियं, रुवत्थं सरुव ज्ञानत्थं॥५२९॥

मुनि महाराज... अथवा धर्मात्मा **रागादि दोषों से रहित उस धर्मध्यान को ध्याते हैं।** उस राग-विकल्प से रहित अन्तर स्वभाव शुद्ध निर्विकल्प, निर्विकल्प—विकार / रागरहित चैतन्य पुंज पड़ा है, जिसमें मिथ्याज्ञान नहीं, **न कोई शल्य है। जो अपने स्वरूप के ध्यान में स्थिरता रूप है उसे... 'रुवत्थं' उसे ही रूपस्थ ध्यान कहते हैं।** यह रूपस्थ ध्यान। अपना स्वरूपरूप पड़ा है, उसमें एकाग्र होना, उसे रूपस्थ ध्यान कहते हैं। लो! यहाँ तो प्रस्तुत जरा शब्द आया न? समझ में आया? अभ्यन्तर, वहाँ से उठाया है। वह बाहर है न अनशन, ऊनोदर, रसपरित्याग। प्रायश्चित अभ्यन्तर। तो अभ्यन्तर के दो अर्थ किये हैं। जितना अनादि काल से शुभाशुभ राग और शरीर आदि प्राप्त संयोग प्रस्तुत है, उसका लक्ष्य, रुचि, आश्रय छोड़कर अप्रस्तुत जो अभ्यन्तर आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा धारी है, उसकी दृष्टि लगाकर साधन करता है, उसे भगवान तप और प्रायश्चित कहते हैं। उसने अनन्त संसार के पाप को छेद डाला। समझ में आया? उस पुण्य को भी छेदना, इसका नाम प्रायश्चित है। यह ६७ गाथा हुई। चलती गाथा। ६८ (गाथा)।

वेदंति वेद वेदांगं, वेदंते भुवनत्रयं।
तिअर्थं रत्नत्रयं सुधं, विद्यमान लोकं धुवं॥६८॥

विद्यानुवाद है भाई! यह विद्यानुवाद आता है न? चौदह पूर्व में एक विद्यानुवाद पूर्व आता है। तो कहते हैं, विद्यानुवाद किसे कहना? उस विद्या में क्या कहा है? विद्यानुवाद एक पूर्व है, तो उसमें कौनसी विद्या कही गयी है? तो कहते हैं।

वेदंति वेद वेदांगं, वेदंते भुवनत्रयं।
तिअर्थं रत्नत्रयं सुधं, विद्यमान लोकं धुवं॥६८॥

देखो! विद्या में से विद्यमान लोक निकाला। **आत्मिक श्रुतज्ञान विद्या...** उसे विद्या कहते हैं। लौकिक विद्या और शिक्षा की विद्या को विद्या नहीं कहते हैं। यह संसार की होशियारी... डाहपण को क्या कहते हैं? शायनपना। शायनपना कहते हैं न? यह तुम्हारी होशियारी है न तम्बाकू में बहुत है। उसे यहाँ विद्या नहीं कहते। ...लालजी! होशियार है न उसमें? बराबर तम्बाकू की जाँच करे, ऐसा है और वैसा है। उसकी डिब्बी सड़ी हुई नहीं, पत्ता अखण्ड है और धूल है। है तो सब धूल न? कहते हैं कि उसकी होशियारी को हम विद्या नहीं कहते। और मात्र शास्त्र पढ़ा हो, उसे भी हम विद्या नहीं कहते। समझ में आया? विद्यमान विद्यते इति विद्यमानः। विद्यमान आत्मा अनन्तगुण का धारी है, उसका आत्मज्ञान करता है, उसे आत्मज्ञान, श्रुतज्ञान को विद्या कहा जाता है। समझ में आया? प्रत्येक शब्द को अध्यात्म में घटित किया है। अध्यात्म की....

आत्मिक श्रुतज्ञान विद्या या केवलज्ञान विद्या... दो प्रकार की विद्या। विद्यमान त्रिकाल भगवान आत्मा शुद्ध द्रव्यस्वभाव अपना निर्मल परमात्मा राग से रहित, उसका ज्ञान वह श्रुतज्ञान, वह विद्या और या केवलज्ञान पूर्ण दशा, वह विद्या।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन प्रकार कहे न! यह श्रुतज्ञान और केवलज्ञान विद्या। यह संसार के तुम्हारे जवाहरात की विद्या, विद्या नहीं—ऐसा कहा। उसे निकाल दिया। वह तो नहीं, परन्तु मात्र शास्त्र का अभ्यास करना और स्वरूप का ज्ञान न करना, वह भी विद्या नहीं। समझ में आया? तुमको होशियार कहा जाता है? कि नहीं। धर्मात्मा कहते हैं कि वह शयाना नहीं है, वह विद्यावान नहीं है। क्योंकि वह विद्या तो नाशवान है। अविनाशी आत्मा की विद्या बिना का ज्ञान, सब अविद्या कहा जाता है। साविद्या या विमुक्तये। या विद्या सा... जो विद्या अपनी मुक्ति में काम करे, उसे विद्या कहा जाता है। विद्यालय में लिखते हैं। देखा है? बड़े-बड़े विद्यालय होते हैं न। क्या लिखे? 'सा विद्या या विमुक्तये।' उसे विद्या कहते हैं कि जिसमें आत्मा की मुक्ति हो। बन्धन से मुक्ति हो, उसे विद्या कहा जाता है। विद्यालय में लिखते हैं, परन्तु उन्हें भी खबर नहीं।

समझ में आया ? तो कहते हैं, देखो ! भगवानजीभाई ! लो, यह संसार की कपड़ा-बपड़ा की होशियारी, वह विद्या नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह गजब भाई ! संसार की बड़ी समझण, दुनिया में चतुर। डाह्या अर्थात् शयाना। दुनिया का शयाना हो, सामने पूछनेयोग्य। पूछो भाई इस सेठ को। बहुत बुद्धिवाला और ऐसा है। यह शयाना-बयाना नहीं। यह तो पागल है। तो (विद्या) क्या है ? **आत्मिक श्रुतज्ञान विद्या...** आत्मा का अन्दर ज्ञान करना, वह विद्या। क्यों ? विद्यमान त्रिकाल पदार्थ का ज्ञान हुआ तो उस ज्ञान को विद्या कहा जाता है।

'वेद वेदांगं, वेदंते' द्वादशांग वेद व उसके अंग प्रत्यंग को जानती है। देखो ! वह सम्यग्ज्ञान बारह अंग को जानता है और उसके अंग-प्रत्यंग सबको जानता है। श्रुतज्ञान की विद्या अपने आत्मा में से उत्पन्न हुई। त्रिकाल पदार्थ जो अविनाशी भगवान विद्यमान त्रिकाल मौजूद, मौजूद में से निकालकर सम्यग्ज्ञान हुआ, वह बारह अंग को जानता है। क्या कहते हैं ? 'सब आगमभेद सो उर बसे।' ऐसी आत्मज्ञान विद्या श्रुत। समस्त बारह अंग में क्या कहा है, उसका ख्याल आ जाता है, कुछ बाकी नहीं रहता। **द्वादशांग वेद व उसके अंग प्रत्यंग...** अन्तर्भेद है न सब ? उसके पद हैं।

'भुवनत्रयं वेदंते' लो ! विद्या कही न श्रुतज्ञान ? **तीन भुवन को जानती है।** विद्या। तीन लोक को (जाननेवाला) सम्यक् श्रुतज्ञान विद्या। आत्मा का ज्ञान है, वह तीन लोक क्या है, उसे जानता है। **'रत्नत्रयं सुधं अर्थं' रत्नत्रयमयी शुद्ध आत्म पदार्थ को...** लो ! **रत्नत्रयमयी शुद्ध आत्म पदार्थ को...** उसे भी श्रुतज्ञान विद्या जानती है। मैं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित आत्मा हूँ, ऐसा श्रुतज्ञान उसे जानता है। अब अन्तिम शब्द कहा। **'धुवं विद्यमान लोकं'** जो **निश्चल अस्तिरूप इस जगत...** जैसा विद्यमान आत्मा है, उसका ज्ञान किया, इस प्रकार विद्यमान तीन लोक, तीन काल है। विद्यमान है। विद्या पूर्व में भगवान ने ऐसा कहा कि निश्चल विद्यमान जो तीन लोक है, उसे अपना ज्ञान अपने को जानता है, उसमें तीन लोक भी ज्ञात होते हैं। उसे श्रुतज्ञान विद्या अथवा केवलज्ञान विद्या कहा जाता है। वह विद्या पूर्व में यह कहा है। कहो, पण्डितजी ! यह पढ़ा है या नहीं कभी ? देखा भी नहीं होगा, पढ़ा भी नहीं होगा। सेठ तो कहाँ से पढ़े तम्बाकू के धन्धे में से ? तुम तो पहले निवृत्त हो। समझ में आया ?

६९। ६९ है न? इसमें जरा यह लिया है। तीर्थ-तीर्थ है न? तीर्थ है एक जगह। कहीं है सही। वह तीर्थ है न? दूसरे में कहीं है। यहाँ तो कहते हैं तीर्थ। इसमें कहीं होगा। बहुत .... तीर्थ शुद्धं, इसमें पृष्ठ २४९। इसमें २४९ है, श्रावकाचार, हों! देखो, २५० श्लोक। श्रावकाचार २५०।

न्यानं तत्वानि वेदंते, सुद्ध तत्व प्रकासकं।
सुद्धात्मा तिअर्थं सुद्धं, न्यानं न्यान प्रयोजनं॥२५०॥

है? क्या कहते हैं देखो, यह तो .... है न तो उसमें से तीर्थ कहा। '**न्यानं तत्वानि वेदंते' ज्ञान वही है जो जीवादि सात तत्त्वों का अनुभव करावे...** सम्यग्ज्ञान में उसका वेदन करावे। यह जीव है, यह अजीव मुझमें नहीं, आस्रव मुझमें नहीं, बन्ध मुझमें नहीं, संवर-निर्जरा शुद्ध पर्याय है, ऐसा जो ज्ञान करावे और '**सुद्ध तत्व प्रकासकं' शुद्ध निर्दोष पदार्थों का और शास्त्री सम्बन्धी...** समय शब्द है न? समय में से दो निकाला। समय अर्थात् पदार्थ और समय अर्थात् शास्त्र। दोनों के विषय का प्रकाशक हो, उसे ज्ञान कहते हैं।

'**सुद्धात्मा तिअर्थं सुद्धं**' देखो, **शुद्ध तीर्थस्वरूप शुद्धात्मा को झलकानेवाला है।** अपना तीर्थ आत्मा, उसे सम्यग्ज्ञान प्रकाशित करता है। उसे यहाँ तीर्थ कहते हैं। समझ में आया? बाहर में शत्रुंजय में नहाते हैं न, ऐसा आता है न? उसका भव व्यर्थ जाये, न नहाये उसे। धूल में भी नहीं। वहाँ मछलियाँ भी नहाती हैं। मछलियाँ भी पानी में नहाती हैं। तो क्या पानी से शुद्धि होती है? समझ में आया? अपना ज्ञानजल राग से रहित शुद्ध अपना प्रगट करना, उस ज्ञान से ज्ञान की उत्पत्ति, उन्नति का प्रयोजन है। **वही ज्ञानाचार तीर्थरूप है।** समझ में आया? **वही ज्ञानाचार तीर्थरूप है।** इत्यादि-इत्यादि बहुत बात की है। इसमें भी केवलज्ञान लिया है वापस।

न्यानेन न्यानमालंबं, पंच दीप्ति प्रस्थितं।
उत्पन्नं केवलं न्यानं, सुद्धं सुद्ध दिस्टितं॥२५१॥

'**न्यानेन न्यानमालंबं, पंच दीप्ति प्रस्थितं**' ऐसा। यह तीर्थ कहा जाता है। '**न्यानेन न्यानमालंबं**' २५१। **सम्यग्ज्ञान व श्रुतज्ञान के द्वारा आत्मज्ञान को दृढ़ करना चाहिए।**

यह श्रावकाचार। **पंच प्रकार ज्ञानों के भीतर ... जो केवलज्ञान पैदा हो जावे, साथ शुद्धात्मा अत्यन्त प्रत्यक्ष दर्शन हो जावे।** ऐसे अन्तर के ज्ञान को तीर्थ कहा जाता है। समझ में आया? बाहर तीर्थ, वह तो जरा शुभभाव हो। भक्ति आदि है, परन्तु वहाँ से मोक्ष हो जायेगा और कल्याण हो जायेगा, ऐसी बात स्वरूप के साधन में नहीं है। इस ओर बहुत लिया है। ... अपने लिया न तीर्थ तक, कहा न? मूल बिना वृक्ष। २०८। श्रावकाचार, हों! श्रावकाचार। २०८ (गाथा)। २१२ पृष्ठ है। २०८ गाथा है श्रावकाचार की।

जस्य संमिक्त हीनस्य, उग्रं तव व्रत संजुतं।
संजम क्रिया अकार्जं च, मूल बिना वृक्षं जथा॥२०८॥

है? तो कैसे ले लिया एकदम क्षुल्लकपना? सम्यग्दर्शन की भी खबर नहीं और ले लो क्षुल्लकपना। सच्ची बात है या नहीं? लिया था न पहले? लिया था। क्या लिया था? खोटा वेश। क्या कहा, देखो! **'जस्य संमिक्त हीनस्य' जो कोई सम्यग्दर्शन से रहित है।** है न **'हीनस्य'** है न? अपना शुद्ध स्वरूप भूमिका की प्रतीति नहीं। किसमें स्थिर होना, ऐसा चैतन्य का साक्षात्कार दृष्टि में आया नहीं। मेरी अनादि-अनन्त ध्रुव चीज़ क्या है, उसका तो श्रद्धा-ज्ञान हुआ नहीं। **कठिन तप तपता है।** है? देखो। **'उग्रं'** हों! उग्र तप करता है बारह-बारह महीने के अपवास, छह-छह महीने के अपवास। अपवास के कारण जरा यह ममरा या क्या कहते हैं भुने हुए चने। चना-चना ले। छह महीना करते हैं। और उग्र व्रत पालते हैं। महाब्रह्मचर्य पाले, महाव्रत पाले, अहिंसा पाले, सत्य बोले। व्यवहार हों सत्य। चोरकर कुछ ले नहीं। एक लंगोटी का ताना-बाना भी रखे नहीं। ऐसे व्रत पालना और संयम धारना। इन्द्रियदमन करना। सर्व क्रिया। **'संजम क्रिया अकाज'** देखो, है न? **'संजम क्रिया अकाज'** यह सब सम्यग्दर्शन बिना अकार्य है। इसमें आत्मा का कुछ फल होता नहीं।

क्या है? **'मूल बिना वृक्षं जथा' 'मूलो नास्ति कुतो शाखा'** जिस वृक्ष में मूल नहीं, उसमें डाली कहाँ से आयी? फल कहाँ से आये? ऐसा कहते हैं देखो तारणस्वामी। **ये मूल के बिना वृक्ष नहीं हो सकता।** आया न, देखो न! **'दंसण मूलो धम्मो'** है न

सामने श्लोक बड़े अक्षर में? **'दंसण मूलो धम्मो'** धर्म अर्थात् चारित्र उसका मूल दर्शन है। बड़े अक्षर में लिखा है। चार ट्रेडमार्क है चारों ओर चार बड़े। **'दंसण मूलो धम्मो'** धर्म अर्थात् आत्मा का चारित्र, उसका मूल सम्यग्दर्शन है। जिसे मूल नहीं, उसे वृक्ष कहाँ से फले? यह कहते हैं। समझ में आया? **मूल के बिना वृक्ष नहीं हो सकता। कोई ऐसा मान ले कि मूल बिना वृक्ष हो जायेगा। तो उसकी पूरी अज्ञानता है। मूल या जड़ जब होगा तब ही वृक्ष अंकुरित होगा, फूटेगा, बढ़ेगा, पत्र, शाखा होगी, उसमें फल लगेंगे। जड़ बिना वृक्ष कभी नहीं लगता, जड़ द्वारा वृक्ष का पोषण होता है, ऐसे सम्यग्दर्शन नहीं...** जिसमें अपने परिणाम स्वरूप सन्मुख करके प्रतीति की नहीं, जिसने राग और निमित्त से परिणाम हटाकर स्वभाव सन्मुख किये नहीं, और अन्तर आत्मा में यह आत्मा शुद्ध है, ऐसा दर्शन-प्रतीति हुई नहीं, उसे व्रत और तप और सब बिना एक के शून्य हैं। समझ में आया? लो यह मूल बिना वृक्ष। दृष्टान्त है।

अब फिर कहा देखो २०९।

संमिक्तं जस्य मूलस्य, साहा व्रत डाल नंतनंताई।
अवरेवि गुणो होंति, संमिक्तं जस्य ह्दियस्य॥२०९॥

जिसके सम्यग्दर्शनरूपी जड़ है... जड़ कहते हैं न वह? मूल को जड़ कहते हैं। **'संमिक्तं जस्य मूलस्य'** मूल जिसका सम्यग्दर्शन जड़ है। **शाखायें और व्रतरूपी अनन्तानन्त हो सकते हैं।** पश्चात् स्वरूप की स्थिरता आदि अनन्तानन्त शाखा हो सकती है। **और भी बहुत गुण होते हैं...** सम्यग्दर्शन के पश्चात् अन्तर में एकाग्र होकर बहुत गुणों की प्राप्ति होती है। **'जस्य ह्दियस्य संमिक्तं' जिसके अन्तर में सम्यक्त्व है, उसको सब पर्याय निर्मल प्रगट होती है।** दूसरे को नहीं होती। समझ में आया?

संमिक्त बिना जीवा, जानै अंगाई श्रुत बहुभेयं।
अनेय व्रत चरनं, मिथ्या तप बाटिका जीवो॥२१०॥

कहो, समझ में आया? क्या कहते हैं? २१० है। **सम्यग्दर्शन के बिना जीव ग्यारह अंग नौ पूर्व तक बहुत प्रकार शास्त्रों को जाने...** ग्यारह अंग और नौ पूर्व। **अथवा अनेक व्रतों का आचरण करे, यह सब जीव का मिथ्या तप का बगीचा लगाना है,...**

'मिथ्या तप बाटिका जीवो' मिथ्या श्रद्धा में ऐसी तप क्रिया होती है तो मिथ्या तप में निवास—रहने का जाल है। कहो, समझ में आया? इसलिए सम्यग्दर्शन बिना कुछ होता नहीं। यह आया। और तत्त्वार्थश्रद्धानं, भाई उसमें लिया है, हों! अपने श्रावकाचार में। पृष्ठ २३७। यह जो सम्यग्दर्शन की व्याख्या की, वह तत्त्वार्थश्रद्धान ही है, ऐसा बताते हैं। २३७ पृष्ठ है। वापस कोई कहे कि भाई! तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन कहाँ गया? समझ में आया? तो वह तत्त्वार्थश्रद्धान इसमें डाला है। २३७ है, देखो, २३६ श्लोक है।

'दर्सनं तत्त्व सार्धं' उमास्वामी कहते हैं न तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन? भाई! यह भी तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन कहो या आत्मा का दर्शन कहो दोनों एक ही बात है। दोनों में अन्तर नहीं है। हम आत्मा के दर्शन को सम्यक् कहते हैं और तत्त्वार्थश्रद्धान को फिर भूल गये, यह बात है ही नहीं। दोनों एक ही बात है।

दर्सनं तत्त्व सार्धं च, तिअर्थं सुद्ध दिस्टतं।
मय मूर्ति संपूर्नं च, स्वात्म दर्सन चिंतनं॥२३६॥

तत्त्व का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। वह भवसागर से तारने का तीर्थ... अर्थात् जहाज है। है? **यही शुद्ध दृष्टिमय है...** और ज्ञानमूर्ति अपना भगवान अपने सर्व गुणों से पूर्ण अपने आत्मा का दर्शन और चिन्तवन है। पश्चात तो बहुत लिया है।

दर्सनं सप्त तत्वानं, दर्व काय पदार्थकं।
जीव द्रव्यं च सुद्धं च, सार्धं सुद्धं दरसनं॥२३७॥

अर्थात् सात तत्त्व की श्रद्धा यथार्थ हो तो उसे भी सम्यग्दर्शन कहते हैं। परन्तु वह तत्त्वार्थ दर्शन आत्मा के दर्शन बिना तत्त्वार्थश्रद्धान सच्चा होता नहीं। समझ में आया? यह ६८ गाथा हुई। चलती ६८। (अब) ६९।

अनुक्रमं ममलं सुधं, बारंबारं च सार्धयं।
सुध तत्त्व दर्सनं नित्यं, आत्मनं परमात्मनं॥६९॥

तत्त्वज्ञानी महात्मा नोकर्म अर्थात् शरीररहित... नोकर्म है न? नोकर्म अ-रहित। **कर्ममलरहित शुद्ध पदार्थ को ही अर्थात् आत्मा या परमात्मामयी शुद्ध तत्त्व का ही नित्य बारबार दर्शन करते हैं।** बारम्बार वह भगवान आत्मा का दर्शन करता है। समझ

में आया? '**आत्मनं परमात्मनं सुध तत्त्व दर्सनं नित्यं**' बारम्बार दर्शन। भगवान शुद्ध आत्मा निर्मल पदार्थ है और शरीर से, कर्म से रहित है, उसका बारम्बार दर्शन करता है, वही वास्तव में देवदर्शन और गुरुदर्शन कहा जाता है। समझ में आया? इस दर्शन बिना अकेले बाहर से दर्शन करे, उसमें कुछ होता नहीं। यह दर्शन कहा न? आत्मा का दर्शन, भाई!

अब कल्याण पूर्व। ७०। कल्याण पूर्व है न? चौदह पूर्व में एक कल्याण पूर्व है। नाम सुना है? चौदह पूर्व में एक कल्याण पूर्व नाम का पूर्व है। चौदह पूर्व हैं न? कल्याण पूर्व। तो कल्याण पूर्व में क्या कहा है? कल्याण पूर्व में भगवान ने क्या कहा है, वह तारणस्वामी कहते हैं। कि कल्याण पूर्व में तेरे कल्याण की बात की है। समझ में आया? कल्याण पूर्व में कहीं ऐसा करो, वैसा करो... (ऐसा नहीं है)। आता है, जानने का कहा है। है शुभराग के सामने, शुभराग होता है, व्यवहार होता है, परन्तु उससे कल्याण हो जाये, ऐसा कल्याण पूर्व में कहा नहीं। समझ में आया? देखो, कितने ही पण्डित कहते हैं कि निश्चय और व्यवहार सम है। यहाँ कहते हैं कि नहीं, व्यवहार से निश्चय भिन्न है। व्यवहार से कल्याण होता नहीं, निश्चय से कल्याण होता है तो व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है, ऐसे दोनों समान नहीं हैं। समझ में आया?

गन्ने का रस भी पीओ, गन्ना भी खाना और बासुंदी भी खाना। एक साथ नहीं हो सकता? गन्ना-गन्ना। छिलका निकालते हैं न? तो उसके साथ बासुंदी। तो बासुंदी नीचे उतारना और उसके कूचा बाहर निकालना। दोनों एक साथ होते हैं? हो सकते हैं? कभी नहीं हो सकते। उसका रस निकालकर पीओ तो अलग बात है। परन्तु गन्ना पूरा खाया, वह छिलका निकालकर खाते हैं न? और साथ में बासुंदी भी पी। तो कूचा निकाले तो बासुंदी निकल जायेगी, बासुंदी अन्दर जायेगी तो छिलका अन्दर घुस जायेगा। इसी प्रकार व्यवहार है वह छिलका है। क्या कहा समझ में आया? व्यवहार का विकल्प दया, व्रत, आदि हो परन्तु वह छिलका है, वह निकाल देने की चीज़ है और निश्चय अन्तर में प्रवेश करके आनन्द का अनुभव करने की चीज़ है। समझ में आया? यह विवाद करते हैं, देखो!

आया है न अभी नहीं ? बड़ा लेख आया है। उपादान-निमित्त समकक्षी है। और सोनगढ़वाले कहते हैं... हमारा नाम लिखा है। नाम कहाँ है ? परन्तु यह शरीर तो धूल है। यह कहते हैं या नहीं, उपादान ही बलवान है, निमित्त बलवान नहीं। नहीं, हम कहते हैं कि दोनों बलवान हैं। रखो तुम्हारे पास भटकने में। समझ में आया ? और निश्चय-व्यवहार दोनों समान हैं। धूल में भी समान नहीं। देखो, यहाँ क्या कहते हैं ?

कल्यानं कल्पयं सुद्धं, पूर्व कल्पंति सास्वतं।
न्यानमयं च तत्त्वार्थं, कल्यानं ध्यान संजुतं॥७०॥

ऐसी बात तो की है। अहो! **'कल्यानं कल्पयं पूर्व' कल्याण प्रवाद पूर्व...** नाम का चौदह पूर्व का एक भाग है पूर्व। क्या कहते हैं ? **'सुद्धं सास्वतं न्यानमयं च तत्त्वार्थं कल्यानं ध्यान संजुतं कल्पंति'** भगवान आत्मा शुद्ध अविनाशी ज्ञानमयी निश्चय तत्त्व जो अखण्डानन्द प्रभु पवित्र निर्विकल्प **जो कल्याणकारक है व ध्यानसहित है,...** ७०वीं चलती है। **उसको बताता है।** कल्याण पूर्व। व्यवहार को बताता है, ऐसा भी यहाँ तो लिया नहीं। समझ में आया ? होता है, ऐसा जो ज्ञान कल्याण अपने स्वरूप की ओर मुड़कर निर्विकल्प सच्चे ज्ञान का घोलन हुआ तो बाकी राग रहता है तो सही, शुभराग तो है, उस राग का ज्ञान, स्व के ज्ञान में राग का ज्ञान आ जाता है। राग का ज्ञान नया करना नहीं पड़ता। समझ में आया ?

व्यवहार से कल्याण होता है, निश्चय से कल्याण होता है। दोनों से कल्याण होगा ? दोनों को मोक्षमार्ग कहा है या नहीं ? व्यवहारमोक्षमार्ग, निश्चयमोक्षमार्ग। दो मार्ग कहे हैं या नहीं ? यह कथन किया है, मार्ग दो नहीं। मार्ग तो एक ही अपना शुद्ध स्वरूप अखण्डानन्द की श्रद्धा-ज्ञान की रमणता करना, वह मोक्षमार्ग है। बीच में राग को निमित्त देखकर छह द्रव्य, सात तत्त्व, भगवान, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग देखकर व्यवहार समकित का आरोप राग में दिया है। वास्तव में वह व्यवहार समकित है नहीं। सम्यक् तो निश्चय समकित वही निश्चय समकित है। ऐसा कल्याण पूर्व में कहा गया है। गजब बात भाई!

अरे! पण्डित, हों! बड़े-बड़े काशी के पढ़े हुए। काशी के बोर होते हैं न ? यह

क्या है ? यह कोई आम होगा ? काशी के बोर कल कहते थे वह काशीफल का। यहाँ तो कहते हैं कि भगवान! ओहोहो! जो विकल्प उठता है परसन्मुख, परद्रव्य सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ साक्षात् होते हैं, उस ओर का राग हुआ भक्ति का, स्तुति का, वह भी छोड़ने की चीज़ है, रखने की चीज़ है नहीं। होता है, नीचे होता है, परन्तु रखने की चीज़ नहीं। अन्दर में उतारने की नहीं। वह कूचा निकाल डालने की चीज़ है। समझ में आया ? भारी झगड़ा भाई! इसमें तो व्यवहार को याद भी नहीं किया। तो ऐसा भी कर दे कि व्यवहार का लोप ही है।

कहते हैं कि **कल्यानप्रवाद पूर्व में तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्माण इन पाँच कल्याणकों का व्यवहारनय से कथन है।** मूल तो व्यवहारनय से पाँच कल्याणक का कहा है न वहाँ ? समझ में आया ? इसमें भी कहीं कहा है। कल्याणक का आया था न कहीं ? उसमें आया था। उसमें होगा ममलपाहुड में पंचकल्याणक। पृष्ठ १८१ इसमें है। पृष्ठ १८१ है। क्या कहते हैं देखो! यह ममलपाहुड। फुलना कौन सा है ? फुलना-७४। कल्याणक फुलना। देखो! यहाँ कल्याण ही आया अपने। वह कल्याण पूर्व है न भाई! अर्थात् कल्याण पूर्व में कल्याण फुलना है देखो, और यह आया। कल्याण फुलना है। उसमें आया, देखो!

जब जिनु गर्भवास अवतरियौ, ऊर्ध ध्यान मनु लायौ।
दर्सन न्यान चरन तव यरियौ, उव उवन सिद्धि चितु लायी ॥१॥

है ? आया ?

अरी मैं संमत्तु रयनु धरिये,
जिहि रमन मुक्ति लहिये।
अरी मैं समय सरनि मिलिये,
अरी मैं जिन वयनु हिये धरिये ॥२॥

क्या कहते हैं देखो अर्थ में ? अर्थ है। **'जब जिनु गर्भवास अवतरियौ'** यह कल्याण पूर्व की बात चलती है। देखो! उसमें आया कल्याण, उसकी बात यहाँ कहते हैं। **जब श्री जिनेन्द्र भगवान सम्यग्दृष्टि श्रद्धावान भव्य जीव के मनरूपी गर्भ के भीतर**

आकर वास करते हैं। अपनी पर्याय में वास करते हैं। गर्भ, जन्म हुआ आत्मा में तीर्थंकर होने की योग्यता है। ओहोहो! समझ में आया? **'जब जिनु गर्भवास अवतरियौ'** भगवान अपने सम्यग्दर्शन की श्रद्धा में आया। **निश्चयनय की अपेक्षा से श्री तीर्थंकर भगवान के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष पाँचों कल्याणकों का वर्णन है।** समझ में आया? कल्याण पूर्व में व्यवहारनय से पाँचों ही कल्याणक का वर्णन है। निश्चय से उसमें आत्मा का अन्तर में गर्भ हुआ (कि) मैं पूर्णानन्द प्रभु, परमात्मा इससे होऊँगा, ऐसे श्रद्धा-ज्ञान हुए, वह गर्भ रहा। उसमें जन्म हुआ (अर्थात्) पर्याय की प्राप्ति (हुई)। विशेष करते-करते तप कल्याणक चारित्र हुआ। केवलज्ञान हुआ, मोक्ष हुआ। यह पंच कल्याणक अपनी पर्याय में उतरते हैं। समझ में आया? देखो! सब लिया है। पाँच कल्याणक के नाम इन्होंने दे दिये हैं। मूल यह भजन है, हों! भजन है न! यह भजन में आया है कि हे भाई! ऐसा करके है।

निश्चय से 'अरी मैं संमत्तु रयनु धरिये' 'अरी' अर्थात् हे भाई! मैंने सम्यग्दर्शन रत्न को धारण किया। यह मेरा गर्भ हुआ भगवान का कि मैं तीर्थंकर होने के योग्य हो गया। **'जिहि रमन मुक्ति लहिये।' जिससे मुक्ति रमणी प्राप्त होगी। 'अरी मैं समय सरनि मिलिये' मेरा स्वरूप समय पदार्थ...** उसका शरण मुझे मिला। **अरी मैं जिन वयनु हिये धरिये'** जिनवचन वीतरागभाव को मैंने मेरे हृदय में धारण किया। यही मेरे पंच कल्याणक हैं। ...लालजी! समझ में आया? भक्ति है न? भक्ति है। इसमें १००८ कलश है, हों! १००८ कलश लिये हैं। २२०। १००८ कलश होते हैं या नहीं? किसे? भगवान को। २२० कहा न? २२० में १००८ कलश है। देखो, यह दूसरा श्लोक। कलशों का फुलना ७९। ७९ कलशों की गाथा। भगवान के ऊपर १००८ कलश चढ़ते हैं न? जन्म होता है तब इन्द्र मेरुपर्वत पर लेकर जाता है। १००८ कलश इन्द्र चढ़ाता है, यह व्यवहार है। व्यवहार है सही। परन्तु निश्चय कलश क्या है? यह बात यहाँ कहते हैं। दूसरी गाथा है न।

सहकारं अर्थ तिअर्थं, अर्थ सहकार कलस जिन उत्तं।
सुर विंजन परिनमं, सहसं अट्ठंमि चौ उवन चौबीसं॥२॥

चार अनन्त चतुष्टय प्रकाश में सहकारी रत्नत्रयरूपी आत्मा पदार्थ है। इसी आत्मानुभव आत्मा को जिनेन्द्र ने कलश कहा है। यह आत्मानुभवरूपी कलश को आत्मा में कलश चढ़ाया कहलाता है। पानी डाला आत्मा के ऊपर। निर्मल जल। एक हजार आठ कलश का ज्ञान चढ़ाया। समझ में आया? **'सुर विंजन परिनमं' स्वर-व्यंजनरूपी शुद्ध ज्ञान का वह फल है। वह आत्मा का अनुभव हो।** लो यह फल है। और **'सहसं अट्ठंमि चौ उवन' ऐसे आत्मा के ऊपर एक हजार कलशों के द्वारा चौबीस तीर्थंकरों का अभिषेक...** देखो पाठ है **'चौबीसं'** है न? **'सहसं अट्ठंमि चौ उवन चौबीस'** तो **चौबीस तीर्थंकरों का अभिषेक होने से चार चतुष्टय पैदा हो गये हैं।**

अपने आत्मा में व्यवहार से रहित होकर अपने स्वभाव में ज्ञानजल से स्वयं स्नान किया। एक हजार आठ कलश। उसमें चढ़ाते-चढ़ाते, स्थिरता करते... करते... करते... अनन्त चतुष्टय प्रगट हो गये। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, आनन्द। यह अपने स्वभाव के कल्याण में से कल्याणपद प्राप्त होता है। कल्याण कोई व्यवहार से या निमित्त से नहीं होता। यह व्यवहार का बोध कहते हैं। व्यवहार में भी थोड़ा निश्चय का अंश है। व्यवहार में भी थोड़ा है। धूल भी नहीं, सुन तो सही! पुण्यबन्ध है। पुण्य बँधता है। हजार खांडी अनाज हो तो हजार गाड़ा, गाड़ा को क्या कहते हैं? गाड़ी। इतने भूसा। खड कहते हैं न? घास। वह घासफूस होता है उतना। जब तक पूर्ण न हो, तब तक ऐसा होता है। अपने स्वरूप का साधन करके, अपूर्ण हो तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा, स्तुति, व्रत, नियम का विकल्प, सबका विकल्प अपवाद करना, वह भी एक विकल्प शुभराग है। समझ में आया? वास्तव में वह चीज़ नहीं। आत्मा का कल्याण करने की चीज़ अपने अन्तर में आती नहीं।

उपवास की व्याख्या तो है कहीं। उपवास की है सही। दूसरे में होगी। कहीं था अवश्य। उपवास। कारण-कार्य की स्तुति है न! पण्डित की व्याख्या है। कहाँ है? यह तो कल आ गया था। इसमें है देखो! यह क्या है? श्रावकाचार पृष्ठ ४०१। ४०१। है? उपवास किसे कहते हैं, यह बात चलती है। देखो, ४०९। श्रावकाचार का ४०९ श्लोक। ४०८-४०९।

पोसह प्रोषधस्चैव, उववासं जेन क्रीयते।
संमिक्तं जस्य हृदयं सुद्धं, उववासं तस्य उच्यते॥४०८॥

पोषह रूप प्रोषध पर्व के दिन अपना उपवास किया जावे। जिसका सम्यग्दर्शन भी शुद्ध हो। यह सम्यग्दर्शन अनुभव हो और उसके समीप में रहे तो उसे उपवास कहते हैं। बाकी लंघन कहते हैं। यह दस पर्व में करते हैं न ? तो कहते हैं कि देखो, '**उववासं तस्य उच्यते**'

संसार विरतिते जेन, सुद्ध तत्त्वं च सार्धयं।
सुद्ध दिस्टी स्थिरी भूतं, उववासं तस्य उच्यते॥४०९॥

जिसने संसार से राग छोड़ दिया है और शुद्ध आत्मिक तत्त्वरूप हो गया है। शुद्ध दृष्टि स्थिर हो गयी है, उसी के उपवास कहा जाता है। ऐसे मात्र आहार न करना और विकल्प से शुभराग करना, उसे भगवान उपवास नहीं कहते। आत्मा के अन्दर ज्ञान में उप, शुद्ध स्वभाव में उप—समीप में वास बसना। अन्तर आनन्द निर्विकल्प में बसना, उसे भगवान उपवास कहते हैं।

उववासं इच्छंन कृत्वा, जिन उक्तं इच्छनं जथा।
भक्ति पूर्वं च इच्छंते, तस्य हृदय समचरेत्॥४१०॥

उपवास करने की बड़ी रुचि रखना योग्य है। जैसा जिनेन्द्र ने कहा है। ऐसी वृत्ति हो यह उपवास की। **जैसा तत्त्व का स्वरूप विचार करे, भक्तिपूर्वक जहाँ रुचि हो, उसके मन में उपवास की मान्यता है।** भगवान शुद्धात्मा की भक्ति अर्थात् प्रेम, उसमें बसना है, उसे भगवान यहाँ उपवास कहा जाता है। कहो, समझ में आया ? कहाँ आया अपने ?

कल्याण पूर्व, ७०-७०। तो उसे कल्याणपूर्व में **तीर्थंकरों का गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण पाँच कल्याणकों का व्यवहार वर्णन है।** वहाँ निश्चय पद लगाकर कहते हैं। **निश्चयनय से पूर्व कल्याण का मार्ग ही बताता है। पूर्व आत्मकल्याण का मार्ग बताता है। ध्यान में एकतान होकर शुद्ध ज्ञानमय अविनाशी आत्मा का अनुभव किया जावे।** लो! अब अन्तिम पूर्व त्रिलोकबिन्दु। चौदह पूर्व में त्रिलोकबिन्दु है चौदहवाँ। त्रिलोकबिन्दु चौदहवाँ पूर्व।

मध्यस्थान सुयं रूपं, पद विंदं च विंदते।
त्रिलोकं ति अर्थ सुद्धं च, न्यानं चरनं तं ध्रुवं॥७१॥
समयं च समयं सुद्धं, पंच दीप्ति समं पदं।
त्रिलोकं त्रिभुवनं च, अप्पा परमप्पयं ध्रुवं॥७२॥

दो गाथा साथ में है। **त्रिलोकबिन्दुसार पूर्व...** चौदह पूर्व में नाम में त्रिलोक... पहले त्रिलोक लिया। **पूर्व मध्यम स्थानमयी पदों को रखनेवाला है।** ... मध्य में है न ५१ करोड़ हजार श्लोक? एक-एक पद में ५१ करोड़ से अधिक श्लोक एक पद में हैं। ऐसे-ऐसे साढ़े बारह करोड़ मध्यम पद हैं। साढ़े बारह करोड़। एक पद में ५१ करोड़ से अधिक श्लोक। जो चौदहवाँ त्रिलोकबिन्दुसार है, उसमें मध्यमपद अर्थात् ५१ करोड़ अधिक श्लोक को मध्यमपद कहते हैं। और ऐसे साढ़े बारह करोड़ मध्यमपद है, एक त्रिलोकबिन्दु में। इतना मुनि को कण्ठस्थ हो जाता है। समझ में आया? कण्ठस्थ हों ऐसे। एक-दो घड़ी में पारायण करना हो तो बारह अंग पारायण कर जाते हैं। दो घड़ी में इतने श्लोक। इतनी सामर्थ्य आत्मा में प्रगट हो जाती है तो कहते हैं कि **तीन लोक के पदार्थों को...** कहनेवाला है। त्रिलोकबिन्दु।

'सुद्धं ध्रुवं तं न्यानं चरनं समयं च' क्या कहते हैं त्रिलोकबिन्दु में। **शुद्ध निश्चय ज्ञान, चारित्र व सम्यग्दर्शन को...** त्रिलोकबिन्दुसार में कहते हैं। समझ में आया? **'समयं सुद्धं'** और **शुद्ध आत्मा को...** समय अर्थात् आत्मा। शुद्ध आत्मा को त्रिलोकबिन्दु में कहा है। अकेला भगवान तेरी वस्तु क्या है? परमात्मा साक्षात् तू ही परमात्मा है। राग और विकल्प का आश्रय छोड़ दे, तू ही पूर्ण परमात्मा है, ऐसा त्रिलोकबिन्दुसार में कहा गया है। **पाँच परमेष्ठियों के समभावरूपी पद को...** और उसमें पाँच परमेष्ठी का स्वरूप बताया है। आत्मा के, हों! अरिहन्त भी आत्मा, सिद्ध भी आत्मा, आचार्य आत्मा, उपाध्याय आत्मा। शरीर, वाणी, मन, विकल्प नहीं। यह पाँच पद आत्मा में तिष्ठते हैं। **ऐसे समभावरूपी पद को तीन लोक की पर्यायों को...** त्रिलोकबिन्दु में कहा है।

'त्रिभुवनं च' लो! **तीन लोक की पर्यायों को निश्चय आत्मा व परमात्मा को बताता है।** तीन लोक की पर्याय एक समय की एक गुण की ऐक, ऐसी अनन्त गुण की

अनन्त तीन काल की पर्याय जैसी अनन्त द्रव्यों की है, वैसी त्रिलोक बिन्दु में बतलायी है। और आत्मा तथा परमात्मा दोनों को बतलाया है। उसमें सार तो यह है या नहीं? दूसरी जानने की बातें तो बहुत आती हैं। परन्तु अन्तर में भगवान परमात्मा तू ही शुद्ध है। परमात्मा तेरे गर्भ में स्थित है, गर्भ में। श्रद्धा हुई तो मेरे गर्भ में परमात्मा है, ऐसी प्रतीति हुई और उसमें से मैं क्रम-क्रम से पर्याय में एकाग्र होकर परमात्मा हो जाऊँ, ऐसी श्रद्धा हुई तो परमात्मा का गर्भ रहा। सेठी! तब उसका जन्म होगा। तेरहवें गुणस्थान में जब स्थिरता होगी, तब केवलज्ञान का जन्म हो गया। आहाहा! समझ में आया? ७१-७२ कही न? अब कहते हैं।

मध्यं च पद विंदं च, पदार्थं पद विंदते।
विंजनं च पदार्थं सुधं, ममात्मा ममलं धुवं॥७३॥

यह मध्यबिन्दु है न? ... क्या-क्या कहा, यह बात चलती है।

मध्यम पद से पदार्थों का बोध होता है। उसमें मध्यम कहा था न? .... उस **मध्यम पद से पदार्थों का बोध होता है। उन मध्यम पद के धारी अंग तथा पूर्वों में जितने शब्द हैं, वे शुद्ध हैं...** यह भगवान ने जितने शब्द कहे, वे सब शुद्ध हैं। शब्द शुद्ध हैं। क्योंकि शुद्ध को बतलाना है तो शब्दों को भी शुद्ध कहा जाता है। शक्कर को कहा तो उस शब्द में शक्कर आयी। शक्कर तो शक्कर में है। इस प्रकार शुद्ध आत्मा को बतलानेवाली शब्द ध्वनि है, उसे भी शुद्ध कहा जाता है।

तथा जितना पदार्थ वर्णन किया गया है, वह सब यथार्थ है... भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने जो आत्मासहित जो पदार्थ कहा, वही यथार्थ अर्थात् सत्य है। **उनमें सार कथन यह है कि यह मेरा आत्मा निश्चय से निर्मल है-सिद्ध सम शुद्ध है।** लो! अन्त में सब पदार्थों में मेरे आत्मा को पर से पृथक् करके, राग से हटकर मेरा आत्मा अन्तर में भिन्न है, वह सार में सार त्रिलोकबिन्दु चौदह पूर्व में कहा गया है। उसमें कोई दूसरी कोई विशेष चीज़ नहीं कही गयी है। लो, ७३ (गाथा) हुई। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)